अगस्त, 2013

मूल्य- 30 रु.

कलम की ज़मीन

जैसे अँधेरे में चाँद

तारानंद वियोगी

जाने क्या-क्या जलेगा, झुलसेगा
जब लपट आसमान में होगी

गरीबा

छेव

तारानंद वियोगी

मैथिली कविताएँ

रू

क़लम की ज़मीन

अगस्त, 2013, मूल्य : 30 रु.

तीसरी यात्रा, तीसरा पड़ाव

कवि विशेष - एक

संपादक

कुमार वीरेन्द्र

ले-आउट व शब्दांकन

पप्पु दुबे
अवधपुरी ट्रान्सफ़ार्मर के सामने,
चन्दवा मोड़, आरा-802301
मो० : 09386128831

संपादकीय सम्पर्क :

ग्राम : भकुरा, पोस्ट - लौहर फरना,
जिला : भोजपुर, आरा - 802315, बिहार
ई-मेल : roopatrika@gmail.com
: rooprakashan@gmail.com
दूरभाष : 09199148586

मूल्य :

व्यक्तियों के लिए

इस अंक का मूल्य	:	30 रु.
एक प्रति	-	50 रु.
वार्षिक	-	200 रु.
त्रैवार्षिक	-	525 रु.
पंचवार्षिक	-	850 रु.
आजीवन	-	5000 रु.
विशेष सहयोग	-	7000 रु.
विदेशों में वार्षिक	-	50 डॉलर/40 पाउण्ड

संस्थाओं के लिए

वार्षिक	-	350 रु.
त्रैवार्षिक	-	850 रु.
पंचवार्षिक	-	1500 रु.
आजीवन	-	7000 रु.

कृपया :

'रू' से सम्बन्धित सारे भुगतान चेक/ड्राफ़्ट या मनीऑर्डर **रू प्रकाशन** के नाम से करें। आरा से बाहर के चेक में 50 रुपए अतिरिक्त जोड़ें।

संपादन-प्रकाशन :

अवैतनिक-अव्यवसायिक।

वाद-स्थल :

'रू' से सम्बन्धित सारे विवादों के लिए न्याय-क्षेत्र केवल, आरा, भोजपुर, बिहार होगा।

प्रकाशित विचार :

पत्रिका की रचनाओं में व्यक्त विचार से संपादकीय सहमति क़तई अनिवार्य नहीं।

संपादक-प्रकाशन-स्वामी-मुद्रक : कुमार वीरेन्द्र के लिए ग्राम - भकुरा, पोस्ट - लौहर फरना, जिला - भोजपुर, आरा - 802315, बिहार से प्रकाशित और बालाजी ग्राफ़िक आर्ट्स, 1/1622, मानसरोवर पार्क, शाहदरा, दिल्ली -110032 से मुद्रित।

कवि का परिचय

तारानंद वियोगी

जन्म : 1966, महिषी (सहरसा) में।

शिक्षा : साहित्याचार्य, एम.ए., पी.एच. डी.।

प्रमुख कृतियाँ : 'अपन युद्धक साक्ष्य', 'हस्तक्षेप', 'प्रलय-रहस्य' (कविता-संग्रह); 'अतिक्रमण', 'शिलालेख' (कहानी-संग्रह); 'कर्मधारय', 'धूमकेतु' (मोनोग्राफ़); 'रामकथा आ मैथिली', 'रामायण' (आलोचना); 'राक्षस की अँगूठी', 'ई भेटल त की भेटल' (बाल-साहित्य- इसी पर साहित्य अकादमी का बाल पुरस्कार), 'महिषी की तारा: इतिहास और आख्यान' (हिन्दी में क्षेत्रीय इतिहास); 'देसिल बयना', 'श्वेत-पत्र', 'राजकमल चौधरी: सृजन के आयाम', 'मण्डल मिश्र और उनका अद्वैत वेदान्त', 'एकटा चम्पाकली एकटा विषधर', 'मनहि विद्यापति' आदि (संपादित-अनूदित कृतियाँ)।

विशेष: मैथिली में दलित-साहित्य के प्रतिष्ठापक।

यात्री-नागार्जुन केन्द्रित आख्यान 'तुमि चिर सारथी' बहुपठित

और बहुचर्चित संस्मरणात्मक कृति हिन्दी में, जिसे 'पहल' ने प्रकाशित किया।

सम्प्रति : बिहार प्रशासनिक सेवा में वरिष्ठ अधिकारी।

सम्पर्क : बदरिकाश्रम, महिषी, सहरसा, बिहार-852216

दूरभाष : 06478-277144, मो.न.- 09431413125

अनुवादक का परिचय

अरुणाभ सौरभ

जन्म : 9 फ़रवरी, 1985 को सहरसा ज़िले के चैनपुर गाँव में।

शिक्षा : एम.ए. (हिन्दी साहित्य), बी.एड., पी.एच. डी. में शोधरत।

प्रकाशन : हिन्दी की समस्त प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में कविताएँ, समीक्षा और आलोचनात्मक निबंध प्रकाशित। कोई पुस्तक हिन्दी में नहीं। मातृभाषा मैथिली में समान गति से लेखन। 'कोसी की नई ज़मीन' (साझा संकलन, संपादक- देवेन्द्र कुमार देवेश) में कुछ कविताएँ प्रकाशित। एक कविता-संग्रह मैथिली में 'एतबे टा नहि' प्रकाशित एवं पुरस्कृत।

संपादन: मैथिली पत्रिका 'नवतुरिया' का संपादन। 'युवा संवाद' के 'शोषण के विरुद्ध कविता' अंक का संपादन।

पुरस्कार एवं सम्मान: 'ज़िन्दगी में कविता सम्मान', 'डॉ. माहेश्वरी सिंह महेश स्मृति सम्मान' एवं मैथिली कविता-संग्रह पर साहित्य अकादमी का 'युवा पुरस्कार- 2012'।

रुचि: सूफ़ी संगीत और लोक-संगीत में विशेष रुचि, गायन एवं अभिनय-कर्म।

सम्प्रति: केन्द्रीय विद्यालय ए.एफ़.एस., बोरझार (गुवाहाटी) में हिन्दी अध्यापक।

संपर्क: अर्जुन कुंज, चैनपुर, सहरसा-852212

मो.न. - 09957833171

ज़मीन पर ज़मीन के लिए

जिस कवि को एक पेड़ जानता हो और परिचय बता सकता हो; नदी, पहाड़, जंगल जानते हों और परिचय बता सकते हों; खेत-खलिहान, बाग़-बगीचे और वे रास्ते जो बने हैं और जो बनेंगे, वे भी जानते हों और परिचय बता सकते हों; सूरज, चाँद, तारे और रोशनी तथा अँधेरा जानते हों और बता सकते हों परिचय, तब निश्चित ही वह कवि धरती का कवि है। और धरती का कवि ही केवल पूर्णता में नहीं; देखो - न देखो एक सम्पूर्णता में दिखता है।

अपनी ज़मीन पर अपनी ज़मीन के लिए कविता की रचना करने वाले इस कवि का नाम तारानंद वियोगी है, जो न सिर्फ़ मैथिली के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कवि हैं, बल्कि भारतीय भाषाओं के भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कवियों में से एक हैं।

तारानंद वियोगी जड़ता के नहीं, जड़ों के कवि हैं, इसलिए उनके पास विचार और प्रतिरोध की वृक्षता है, जो दूर से और अलग दिखती है। मुझे लगता है तारानंद वियोगी की कविताओं का कंटेंट भाषा में घटित हो अपना रूप ग्रहण करता है। भाषा में कंटेंट के अभिव्यक्त होने की कला आज की तारीख़ में बहुत कम कवियों के पास है।

तारानंद वियोगी हाशिए की दुनिया के रचनाकार हैं और उनकी यही बात उन्हें इस अर्थ में विशिष्ट बनाती है कि आज जहाँ बहुत सारे कवि नगर-महानगर केन्द्रित हो रहे हैं, उनकी अभिव्यक्ति केन्द्रित हो रही है, ऐसे में वियोगी का अपने लिए ऐसी ही ज़मीन का चुनाव उन्हें कविता में नायक बनाता है। एकध्रुवीय दुनिया के बाद जिस तरह की त्रासदी और संकट के बादल मंडरा रहे हैं, ख़ासकर गाँवों पर, वे गाँव तारानंद वियोगी की कविताओं की ताकत हैं। वियोगी अपनी रचना का विषय गढ़ते नहीं, विषय खुद भटकते हुए वियोगी को मिल जाते हैं। यह घुमक्कड़ कला है रचना के क्षेत्र में, और यह कला उसी के पास हो सकती है, जो यह जानता हो कि जब भारत जैसा देश पूरी तरह से आधुनिक हुआ ही नहीं, तब वह एकध्रुवीय दुनिया के पूँजीपतियों की साजिश के कारण उत्तरआधुनिक कैसे हो सकता है।

तारानंद वियोगी को पढ़ते हुए मुझे अक्सर लगा है कि जिस कवि का परिचय न सिर्फ़ देश के नागरिक होने तक हो, बल्कि पूरी दुनिया के मनुष्यता होने तक फैला हो, उसका व्यक्तित्व हो या लेखन, दोनों की भाषा, शिल्प और कंटेंट एक सम्पूर्णता के लिए दृश्य साबित होते हैं। यही कारण है कि कवि भले मैथिली में लिखता है, लेकिन उसकी कविओं का अनुवाद किसी भी भाषा में हो, उसकी कविताओं की ताक़त अपनी ज़मीन पर अपनी ज़मीन के लिए मनुष्य और प्रकृति की ही ताक़त बनी रहती है।

साथियो, 'रू' का यह तीसरा अंक इसी अर्थ में आपके हाथ आपके साथ है। आपका जो सहयोग और प्यार मिलता रहा है, वह इस अंक से भी मिलेगा। मैं जानता हूँ कि 'रू' को निकालना बहुत सारी परेशानियों से गुज़रने के बराबर है, पर क्या करें कि जो ठान लिया सो ठान लिया... यानी मंज़िल मिले, न मिले, राह में तो मिलेंगे ज़रूर ही नीम के पेड़ कम-से-कम अपने घावों को भरने के लिए...!

कुमार वीरेन्द्र

संताप का लोक-कवि

रेमण्ड विलियम्स ने लिखा है-

''लेखक एक भाषा में जन्म लेता है, दूसरी एकदम भिन्न भाषाएँ मौजूद हैं, फिर भी उसे जिस भाषा में लिखना है, उसको इस तरह सीखना है कि वह उसके स्वभाव का अंग बन जाए। वह भाषा उसकी रचना का माध्यम है, और वह उसके अपने लोगों के साथ जीवन जीने का माध्यम है, और वह उसके लेखक बनने से पहले उसके व्यक्तित्व के गठन में मौजूद भी है। उसके लेखक होने के लिए यह ज़रूरी है कि वह उस भाषा से और उसकी बुनियादी विशेषताओं से संबद्ध हो।''- मार्क्सिज्म टुडे, जून- 1980, अनुवाद- मैनेजर पांडेय।

तारानंद वियोगी मैथिली के एक महत्त्वपूर्ण लेखक हैं। उन्होंने अपने व्यक्तित्व के गठन में मैथिली को इसी प्रकार स्वीकृत किया है और उनके लेखक होने के पूर्व भी यह भाषा उनके व्यक्तित्व में मौजूद रही होगी। अकारण नहीं है कि मैथिली में लिखकर अपने समकालीन साहित्यकारों में एक विरल पहचान बनाने वाले हैं तारानंद वियोगी। कविता, कथा, आलोचना, संस्मरण आदि सभी विधाओं में यथासाध्य वियोगी ने रचनाएँ की हैं। इतिहास, धर्म-दर्शन के प्रति भी गंभीर अध्ययन और समझ का परिचय भी वियोगी अपनी रचनाओं के मार्फ़त करवाते हैं। बात वियोगी की कविताओं को लेकर करें तो अनायास ज़िमी हैंड्रिक्स की ये पंक्तियाँ याद आने लगती हैं-

''दोज़ वर दे डेज़ माई फ्रैंड
आई थॉट दे उड नेवर एण्ड...''

तारानंद वियोगी की कविताओं से गुज़रना उस लोक-संवेदना के भूतल में पहुँचना है, जहाँ कविताएँ जीवन की गहरी समझ और उसमें निहित पीड़ा को आत्मसात् करती हैं। अपनी मैथिली कविता के ज़रिए उसी समझ और पीड़ा का न सिर्फ़ विवरण देते हैं, बल्कि कारणों की पड़ताल भी करते हैं। दु:ख से लड़ने के अस्त्रों की खोजबीन करते हैं, फिर प्रतिरोध का रूपक रचते हैं। इसीलिए मैथिली की समकालीन कविता के प्रस्थान-बिन्दु रचनेवाले कवि के रूप में इन्हें चिह्नत करना स्वाभाविक लगने लगता है। जो सिर्फ़ अपने कथ्य में निहित यथार्थ को लेकर ही नहीं, बल्कि भाषा, तकनीक और शिल्प को लेकर भी वियोगी विशिष्ट रचने का दावा लेकर आते हैं। इनके रचना-संसार में बहुलता भी है और विविधता भी। मैथिली आलोचकों का ध्यान आकृष्ट करने में सक्षम कविताएँ हैं इनके पास तो मैथिली कविता से प्रेम करनेवाले आम पाठकों को भी ये कविताएँ उनके जीवन के क़रीब लगती हैं। इस कवि को काव्य-परम्परा का ज्ञान बाबा नागार्जुन से प्राप्त हुआ है। (इस संदर्भ में तारानंद वियोगी द्वारा लिखित 'तुम चिर सारथी', अनुवाद- केदार कानन, पहल-पुस्तिका देखी जा सकती है।) इसीलिए इनकी कविताएँ एक पूरे प्रगतिशील फलक पर नागार्जुन की काव्य-परम्परा का विस्तार ही है। इन कविताओं में लोक है, लोक-जीवन का यथार्थ है। लोक-साहित्य विशेषतया मैथिली साहित्य के रचनाकारों के साथ कवि का सापेक्ष तादात्म्य है। व्यापक लोक-चित्त की अवध रणा है। मिथिला की पूरी प्रकृति यहाँ बोलती है। उस प्रकृति में मानवीय संबंध और सरोकार हैं, लोक-त्योहार और उत्सव हैं। व्यवस्थागत और सामाजिक कुरीतियों का बहिष्कार है। एक सार्थक और सामर्थ्यवान लोक-भाषा की मैथिली पूरे उत्सव के साथ यहाँ मौजूद है। तो दूसरी तरफ़ उस लोक-जीवन में निहित अभाव, गरीबी के बीच पल रही आस-पास पसरी लोक-कलाएँ भी हैं, जो कविता की चेतना में रच-बस और खप गई हैं। जीवन-संघर्षों के ताप से दीप्त हैं ये कविताएँ, जो

जीवन-मृत्यु के व्यवस्थित क्रम को दार्शनिक की तरह नहीं, कवि की तरह चुनौती देती हैं। और प्रगतिशील कला-मूल्यों के संरक्षण में भी पूरी तरह से भागीदार हैं- तारानंद वियोगी की कविताएँ।

तारानंद वियोगी पेशे से नौकरशाह और तबीयत से पूरी तरह कवि हैं। इसीलिए पेशे की अफ़सरी को जीवन में साधन जुटाने और जीने-भर के लिए से ज़्यादा महत्त्व नहीं देते। यही कारण है कि कविताएँ उस अफ़सरी के दबावों से पूर्णतया मुक्त उस जीवन के क़रीब के क़रीब हैं, जहाँ अभाव जीवन का हिस्सा है और संत्रास जीवन की गति। मिथिला के लोक-जीवन में निहित ग़रीबी और उससे उपजी पीड़ा को सार्थक अभिव्यक्ति देने का सामर्थ्य इनके पास है। संस्कृत-साहित्य के विद्वान और हिन्दी-अँग्रेज़ी के गहन अध्येता होने का सुख भला अफ़सरी से कैसे संभव हो सकती है? इन सबके लिए बड़े मिज़ाज का होना ज़रूरी है। इसीलिए जो मिलनसार मिज़ाज इनके पास है, उसको हमारे देश के नौकरशाह समझते तो ये दुनिया कुछ और होती!

'जैसे अँधेरे में चाँद' पुस्तिका के ज़रिए उन कविताओं को प्रस्तुत किया गया है, जिसका इसके पूर्व हिन्दी में प्रकाशित संवेद-पुस्तिका 'बुद्ध का दुःख और मेरा', अनुवाद- अविनाश, अक्तूबर- 2008 से अलग मैथिली कविताएँ हैं। इसीलिए ये हिन्दी-पाठकों के लिए सर्वथा नई कविताएँ हैं- जो इनके मैथिली कविता-संग्रह- 'प्रलय-रहस्य' (2010) से और मैथिली की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं से ली गई हैं। साथ की कुछ अप्रकाशित मैथिली की कविताएँ भी इसमें समाहित हैं। इन कविताओं का अनुवाद और यहाँ उनके अनुक्रम में भी आपको एक विशेष क्रम मिल सकता है। शुरू की कुछ कविताएँ कविताओं के रचने के सूत्र प्रकट करती हैं, जो एक मिज़ाज की कविताएँ हैं। 'शब्द', 'किताब', 'जब क़लम थामता हूँ' जैसी कविताएँ इसी मनो-मिज़ाज की कविताएँ हैं। 'मुड़ना चाहो तो रोकती है राह' से लेकर 'खंडहर अभिशाप है' तक की विभिन्न कविताएँ खंडित यथार्थ और विगलित मोह को व्यक्त करती हैं। कोसी नदी, उसके आस-पास की प्रकृति कवि को अत्यंत प्रिय है, तो उसकी विभीषिका से शोक-संतप्त आमजन के दुःख में कवि भागीदार है। 'कोशी के लिए खेद प्रकाश', 'बहो नदी वेगवती', 'धूप', 'सुरक्षित पृथ्वी की ख़ातिर', 'जो सिरजते हैं प्रकाश', 'जैसे अँधेरे में चाँद', 'हम तीन डालियाँ' आदि एक प्रकृति की कविताएँ हैं। इनमें कवि ने अपने आस-पास की प्रकृति से गहरी संपृक्ति को व्यक्त किया है। मानवीय संबंध और सरोकार के प्रति कवि विशेष सचेत है। इसीलिए अपने विभिन्न संगी-साथी, मित्र-अपेक्षित और जिनकी सहमति-असहमति से कवि का निर्माण हुआ है, उन सब पर कवि की कविताएँ बोलती हैं और उनको एक व्यक्ति वियोगी सुनता है। इन्हीं बोलने-सुनने की प्रक्रियाओं में कविताएँ निर्मित होती हैं।

तारानंद वियोगी कविताओं के ज़रिए आत्म-साक्षात्कार को कविताओं में स्वीकृति प्रदान करते हैं। यह एक रचनात्मक ऊर्जा है। इसके अलावा जीवन-संघर्षों के प्रति कवि सचेत है। वह चाहता है कि जीवन और मृत्यु का प्राकृतिक संबंध व्यस्थित क्रम में चले। इसीलिए ऐसी कविताओं के ज़रिए कवि प्रमाणित करता है कि जीवन-क्रम को समझने की सार्थक अभिव्यक्ति उसके पास है। कहना न होगा कि इनकी कविताओं की दुनिया विरल भी है और व्यापक भी। दुनिया के आस-पास बनती-बिगड़ती दुनिया का यहाँ वृत्तचित्र है और नई दुनिया गढ़ने का संकल्प भी। तभी तो बदलाव की पूरी राजनैतिक प्रक्रिया कवि को मालूम है, जिसे वह प्रतिरोध की भाषा में अभिव्यक्त करना अपना कवि-धर्म समझता है। इन्हीं तरह-तरह की दुनिया के बीच बनी कविताओं की दुनिया में कवि तारानंद वियोगी की ये कविताएँ पाठकों को बेहद पसंद आएँगी और सदा स्मृतियों में रहेंगी।

अरुणाभ सौरभ

भूमिका

खेद है कि मैं मुकम्मल किताब न बन पाया

मगर बेकार ही खेद है!
कैसे बन पाता मुकम्मल किताब?

हमेशा जोड़ता रहा
साध्य और साधन में एकसूत्रता
वक़्त मिला तो कविताएँ लिखता रहा

अनजान बग़लगीरों को भाई बताता रहा
अनवच्छिन्न एकान्त को सृजन

न कभी हृदय की बात काटी
न बुद्धि का कभी बधिया किया

यही तो बड़ी बात है
इस सबके बावजूद
कुछ-न-कुछ होकर रहा

वक़्त आ रहा है
जब मुकम्मल किताब से ज़्यादा पठनीय
उसकी भूमिका हुआ करेगी!

शब्द

सघन-घन उल्लास लिए फूल खिले
दूब मुस्काई अमित उछाह लिए
बिखेरते हुए उत्सव-संगीत चिड़ियाँ चहकीं
कितना बताऊँ!
कभी जीवन का अर्थ खोलते पर्वत ने पुकार लगाई
कभी गति का अर्थ समझाती नदी ने

कभी-कभी तो गिलहरी और नेवले तक ने
चिरचिरी और भांठ तक ने होश के तह खोले

बहुत कुछ किया बहुतों बार
बहुतों जन ने हिल-मिलकर मेरे लिए

प्रेम जो किया इन सबने हिल-मिलकर
जहाँ तक समझ पाया, समझा मैंने उसे
बहुत सहज होकर जिया उसे
स्पन्दित हुआ तीव्र संवेदन-क्षमता के आह्लादवश

कवि था और था द्रष्टा मैं
तो इस प्रेम को अभिव्यक्ति देने का
महसूसा दबाव
और अंततः इसे शब्दों में अभिव्यक्ति दी

खिले जो थे फूल, मुस्काई जो थी दूब
वह शब्दों में नहीं
चिड़ियाँ शब्दों में नहीं चहकी थीं
पहाड़ कैसे लगा सकता था शब्दों में पुकार?

इन सब जन मेरे आत्मीय ने
निःशब्द में मुझसे
किया था प्रेम
भरकर निर्विचार से मुझे छुआ था
मगर जब मैं व्यक्त होना चाहा
शब्द ही था एकमात्र उपाय मेरे पास-
विचार ही एकमात्र साधन

निःशब्द की प्रतीति जो थी कोई कहीं
उसे मैंने शब्दों-शब्दों में ख़र्च किया

हम सबके सब बड़े लाचार थे
उनकी तरह निःशब्द-निर्विचार अभिव्यक्ति

हमारी संस्कृति में नहीं थी
जो था हमारा साधन, वही था लाचारी भी
टाँग कटवाकर बैसाखी धारण करनेवालों में से हम थे

क्या ख़ूब हम थे!

जब क़लम थामता हूँ

सबसे पहले मिटती हैं दुश्चिन्ताएँ
फिर उद्वेग मिटता है
चंचलता लेती है विदा
मेरा सारा का सारा एकाकीपन
ढह जाता है
ढह जाता है अहंकार का क़िला
खुल जाता है ख़ालीपन का दरवाज़ा
उसमें भरने लगता है कुछ
उसमें बहुत कुछ भरने लगता है -

मैं जब क़लम थामता हूँ!

मुड़ना चाहो तो रोकती है राह

प्यार करो
तो जाति रोकती है
सम-वेदित होओ
तो रोकता है- धर्म

जुड़ना चाहो
तो अभिमान रोकता है
मुड़ना चाहो
तो रोकती है- राह

खिलखिलाने से स्टेटस रोकता है
गाने से कुण्ठाएँ

ज्ञान धरती पकड़ने से रोकता है
अज्ञान आदमी होने से

कहीं बेईमानी रोकती है, कहीं सरकार
कहीं पंडे रोकते हैं, कहीं बाज़ार

ये जो चेहरे दीखते हैं
अपनी-अपनी क़ब्रगाहों के
अकेले-अकेले मुरदे

सब-के-सब रोकते हैं
कोई यहाँ रोकता है, कोई वहाँ

कहाँ जाओगे भैये
क्या करोगे?

ऐसे में
कैसे उग पाएगा कोई बिरवा
ताज़ा हवा का कोई आतुर झोंका
आ पाएगा अन्दर?

वक़्त ने ऐसी दुनिया बुनी थी

सफ़र की उस गाड़ी में
ठसाठस भीड़ भरी थी
देह से छूती थीं देहें
साँसें साँसों से टकराती थीं

कोई एक भी आदमी
अगर पिए सिगरेट
तो हर किसी से फेफड़े में
पहुँच जाता था निकोटिन

सबके लिए एक ही ड्राइवर था

एक ही सड़क थी
जिस पर सभी चल रहे थे
एक ही थी गाड़ी

जर्क आए तो
सबकी देह साथ-साथ उछलती थी
गाड़ी अगर कहीं खड्ड में गिर पड़ती
तो सबके सब को
एक साथ मर जाना था

लेकिन,
सबके सब ने
जिस तरह पहन रखे अलग-अलग कपड़े
अलग-अलग देवता भी पाल रखे थे
देवताओं के लिए अलग-अलग चरागाह
अलग-अलग सम्प्रदाय
अलग-अलग जातियाँ

उनमें से कोई भी मोटरकार नहीं रखता था
हवाई जहाज़ उनके लिए नहीं बना था
सभी माटी के बेटे थे
और प्रकृति के दामाद

लेकिन, सभी अलग-अलग थे
विलग-विलग, दूर-दूर

वक़्त ने ऐसी दुनिया बुनी थी!

सपना और भविष्य

भूख है, रोग है, बदहाली है, अँधेरा है
निपट अँधेरा है

पर जुलुम तो देखो, मुझे रात-दिन रोशनी के ही सपने आते हैं

एकदम रोशनी के ही
सपने खुशी के, उल्लास के

पंकज ने पूछा-
"इस घुप्प अँधेरे में भी रोशनी के ही सपने कैसे आते हैं पापा-
जिसका अवसान तक नहीं सूझे?"

"देखो बेटा,
रोशनी इस सृष्टि में है, इसीलिए तो आते हैं सपने
अपने हिस्से में भी है रोशनी, इसीलिए!

बेटा, जहाँ कुछ भी नहीं होता, वहाँ क्या भविष्य भी नहीं होता?"

सपनों के बारे में

इन दिनों मुझे बहुत सपने आते हैं
बहुत-बहुत तरह के वे सपने
इन्द्रधनुष सजाते हैं

मगर,
सपनों की लाली मुझे
बलिप्रदान हेतु लाए गए बकरों के गले में झूलती
अरहुल फूल-सी दीखती है
यह भी क्या हो रहा है मुझे?

इतनी तरह से टूटा हूँ
कि अब और टूटना
असंभव लगता है
क्या आपने किसी बिल्कुल ख़ाली डिब्बे से
तेल चूते देखा है?

लेकिन,
सपने मुझे आते हैं
सपने में मुझे अपना घर दीखता है-

सजमन की लत्ती लगी है छप्पर पर
सामने तुलसी-चौरा!
घर में कई लोग हैं
मगर यह घर सुच्चा-सुच्ची मेरा है

क्या वे
यूँ ही बनने दे देंगे मेरा घर?

लेकिन,
मुझे सपने आते हैं
और तय है कि यह ख़ाली डिब्बा
बिल्कुल ख़ाली नहीं हुआ है!

कि़ले ढहते हैं

आदमी की सुरक्षा के लिए
नहीं बनाए गए थे कि़ले!
कि़ले के प्रवेश-द्वार पर
चेतना के शान्तिदूत खड़े नहीं रहते थे!
कि़ले के चतुर्दिक बने गुरु-गंभीर तालाब
निश्चय ही
किसानों के खेत पटाने को
नहीं रचे गए थे!

गुम्बद पर खड़े होकर
सीटियाँ बजाता था आतंक
नंगे नाचती थी सुरक्षा
हवाएँ थर-थर काँपती थीं!

और तब,
शान्ति-दूत बना कि़ला
देता था उपदेश-
बहुत कमज़ोर होता है आदमी

बहुत जल्दी हो जाता है विचलित
पत्थर और आदमी में यही फ़र्क़ है!

बहुत-बहुत वक़्त बीतने पर
कल मैं क़िले की ओर गया था!

देखा-
क़िले अब ढहने लगे हैं
फत्थे-चूने से साटी ईंटें
जवाब देने लगी हैं!

देखा-
टूटकर गिर पड़ी थी बेचारी दीवार
कई जगह से
परिखा में पुल बन गया था
पुल पर मटरगश्ती कर रही थीं चींटियाँ
कनखजूरों के जोड़े अपने बिल खोज रहे थे
या फिर
एकान्त-मिलन की चाह रखते होंगे!

मैंने वहाँ कुछ रंग-बिरंगी चिड़ियाँ भी देखीं
मैं उन्हें पहचान नहीं पाया
मगर,
उस पुल को मैं ज़रूर पहचान गया था
क़िले की टूटी दीवार ने बना दिया था लाचारीवश
जिसे क़िले के आरपार!

लौटते वक़्त
वह गिलहरी भी मिल गई थी अचानक
कहने लगी-
अब हम क़िले के उस पार भी
फल खाने जाया करेंगे भैया,
उस तरफ़ कितने अच्छे-अच्छे पेड़ हैं
बरगद के

कितने मीठे फल होंगे उसके!
आहा!

क़िले से बाहर निकलकर
अब मैं बेफ़िक्र हो गया हूँ,
और, क़िले ढह रहे हैं!

खंडहर अभिशाप है

बहुत पहले
यह खंडहर, खंडहर नहीं था
महल था
और
कच्चे-पके माँसों से बना
यहाँ का सलाद
इलाक़े-भर में मशहूर था

महल में रहनेवाले भेड़िये
रात को नहीं,
दिन-दहाड़े शिकार पर निकलते थे
हवाएँ काँप जाती थीं,
चरमराकर
टूट-टूट जाती थीं चूड़ियाँ,
फटी धोतियों के बदले
लोग अपने होंठ सीने लगते थे
मैदानों में खेलते निष्कलुष बच्चे
घबराकर घर भागते,
माँ सुनती थी-
भागो अम्मा, भेड़िए आए हैं!

मगर,
ये आज की बातें नहीं हैं दोस्त,
तब की हैं
जब इलाक़े की भेड़ें नहीं जानती थीं कि

भेड़ियों के भोजन से
बेहतर भी हो सकता है
उनके जीवन का उपयोग
और यह कि
कोई भी काम ठान लो
ज़ोर लगाने से
सब होता है

अब खंडहर अभिशाप है मित्र,
भेड़ियों के शक्तिहीन बच्चे
भीख तक नहीं माँग सकते सड़कों पर
भूखे पेट भजन तक नहीं गा सकते

फूलों से सुगन्ध
और हवाओं से शीतलता पाने की
उनकी परमिट
रद्द कर दी है प्रकृति ने
खंडहर में घुसकर हवाएँ अब
मृत्यु-गीत गाती हैं
पत्ते मृदंग बजाते हैं
गूँजता है झींगुरों की शहनाई का व्यंग्य-नाद
भेड़ियों के बच्चे
सो तक नहीं पाते
निश्चिन्त

खंडहर अभिशाप है मित्र,
भेड़ियों के महलों का हर खंडहर
अभिशाप है!

कोशी के लिए खेद-प्रकाश

कभी तो मैं तुम्हारे साथ बह नहीं सका
कभी तो मैंने कोशिश नहीं की
अपने विराट के प्रवहन की

पोखर में जमी काई-कुंभियों से
गंदलाती रही मेरी सर्जना की जाठ
कभी तो मैंने कोशिश नहीं की
कि तुम्हारे साथ बहकर
अपने खेतों में जाऊँ
फ़सल की जड़ों में डालूँ
अपनी अभिव्यक्ति के ज्वलंत मंत्र-
कि उनमें बम नहीं उगें
खिलखिलाते मेरे बेटे के पदचाप उगें
अन्त:सलिला मेरी भाभियों की
ठिठोलियाँ उगें
अथबल मेरे पिता के लिए
चैन उगे
कभी तो मैंने कोशिश नहीं की!

00

तुम इतनी ही बड़ी नहीं हो कोशी मैया,
जितनी मैं तुम्हें आँखों में भरता हूँ

मेरे संपूर्ण चेतना-लोक से बड़े-बड़े
बहुत बड़े-बड़े
हैं तुम्हारे एक-एक बेटे
मेरे मन के तराज़ू उनके पदरज तौलते हैं
मेरी आँखों के भीतर की आँखें
यहाँ-वहाँ की हवाओं में
उनके अस्तित्व की गंध देखती हैं
छोटे-छोटे मेरे पाँव
गाँव की कच्ची सड़कों पर
उनकी उपस्थिति की
मुलामियत परखते हैं

मगर, किस मुँह से कहूँ
कभी तो मैंने कोशिश नहीं की

देह-भर में पदरज लेपकर
तुम्हारे साथ बहते चले जाने की
कभी तो मैंने साँसों में
गन्ध नहीं भरी उनकी
मुलामियत की दिशा में
निरन्तर बढ़ते चले जाने की
कभी तो मैंने कोशिश नहीं की!

बहो नदी वेगवती!

तुम यूँ ही नहीं उतर आई थी
पर्वत-शिखर से
ओ वेगवती!

जाने कितने-कितने जन्मों की मेरी प्यास
तुम्हें पुकारती रही थी
जैसे पुकारा था कभी
वाल्मीकि की क्रौंची ने अपने जोड़े को,
जैसे दंगे में जारे गए बब्बन मियाँ को
उसका बालबोध बेटा
कई दिनों तक पुकारता रहा था,
और बेहोश हो जाता था...

बहुत प्यासी थी धरती,
बहुत प्यासे थे मेरे राग-रंग वनस्पति
बहुत-बहुत प्यासा था मैं
प्यास जैसे नसों में बहने लगी थी-
प्यास को कोई नाम देना चाहो
तो करुणा जगेगी
यही थी करुणा-
कि तुम्हें खींच लाई थी पर्वत-शिखर से
ओ नदी वेगवती!

लेकिन, यही तुमसे भूल होती है-

करुणा को तुम समझ लेती हो उपकार,
संवेदनाएँ तुम्हारा अहंकार बन जाती हैं!
तुम भूल जाती हो
नदी बहेगी नहीं, तो
रहेगी कहाँ?
यही तुम्हारी नियति है वेगवती!
यही तुम्हारी प्रगति है
बाक़ी सब अगति है!

मैंने तुम्हें कब बाँधना चाहा?
तुमने तो जाने कितनी बार कहा-
बाँध लो मुझे
लेकिन, मैं जानता था-
नदी को, चिड़िया को और मनुष्य को
बाँधकर नहीं रखा जा सकता

सीमाएँ टूटती हैं
प्रलय आता है
मुक्ति मारती है ज़ोर!

बहो वेगवती!
तुम बहो!

लेकिन, धरती पर बहो!
तय है- पहाड़ तुम्हारे उद्दाम यौवन का
सपना था
पर, सपना कब किसी का अपना हुआ है?

सपने धरती की चीज़ नहीं होते
लेकिन, चाहो तो उन्हें उतारा जा सकता है-
धरती पर!

पर, धरती तो चाहिए ही न!
समूची धरती तुम्हारे नाम है

ओ नदी वेगवती!
बहो, लेकिन धरती पर बहो!

धूप

बीज में छुपा होता है जैसे विशाल वटवृक्ष
हमारी इस काया में छुपी रहती है अनंत-असीम ऊर्जा

मगर, यह भी कोई कहने की बात!

छुपे रहते हैं बिस्तर में ख़ूब-ख़ूब सुबह तक
सोए रहते हैं चादर तान के

छुपे रहते हैं बिस्तर में हम
और उधर बाहर चिड़िया करती रहती है किलोल
मचाए रहती है हुड़दंग
सर धुनती है, देह पटकती है
पता नहीं कितने-कितने मोर्चे जीतती है
और अंततः उगा ही लेती है धूप

सब-के-सब जानते होंगे, सब
कि विकट अँधेरे इस कालखंड में
अँधेरे के विरुद्ध इस युद्ध में
धूप कितनी ज़रूरी है
हमारे लिए, हम सबके लिए

पर, यह भी कोई गुनने की बात!

पर,
हम रहते हैं छुपे हुए बिस्तर में
और चिड़िया उगाती है धूप!

पृथ्वी की ख़ातिर

क़दम-क़दम फुदकती चिड़िया
मेरे कमरे में घुस आती है

सिर मटक-मटक कर
कभी इधर ताकती है, कभी उधर
जाने क्या ढूँढ़ती है

चिड़िया ढूँढ़ती होगी दाने
ओ हाँ! दाने,
जिन्हें ढूँढ़ते-ढूँढ़ते
मैं भी परदेश के इस कमरे तक आ गया हूँ

गेहूँ के कुछ दाने लाकर
कल मैं अपने सिरहाने
छिड़क दूँगा
दाने ढूँढ़ती चिड़िया
मेरे बदन तक आएगी,
और क़दम-क़दम फुदकती
मेरे कंधे पर आकर बैठ जाएगी

ओह!
तब यह पृथ्वी
कितनी सुरक्षित हो जाएगी!

जो सिरजते हैं प्रकाश

अपने-अपने घरों में सोए
लोगों के लिए वे धरती रचते हैं,
जिस पर सुबह उठकर वे चल सकेंगे

चिथड़े-चिथड़े हुए सपनों की
मरम्मत में वे

सारा दिन सारी रात एक किए रहते हैं

कभी वे लिखते हैं कविताएँ
कभी महाविनाश के विरुद्ध अनशन करते हैं।

अँधेरे ने उन्हें राह चुनने का कोई हक़ नहीं दिया,
अतः
कभी वे फ़सल की जड़ में डालते हैं
'उठो जागो' का मंत्र
जिसे कि हमारे बच्चे खाएँगे,
कभी फूलों को प्यार से देते हैं सलाह
कि वे मौसम बदलने तक खिले रहें

हर जगह, हर तरफ़
गहन अँधेरा है,
मगर वे पूरी ताक़त से सिरजते हैं प्रकाश

वे विनाशशील देश के जुगनू हैं!

जैसे अँधेरे में चाँद

कोशी की घाटी में उस दिन
विदेह निश्चिन्तता के क्षणों में मैंने
बालू पर लिखा था तुम्हारा नाम

भीगे बालू की छाती पर
बहुत गहराई तक डुबोई थी मैंने अंगुली
जैसे बहुत गहराई तक धँसा था कभी तुम्हारे अन्तस्तल में

बहुत साफ़ दीखता था तुम्हारा नाम
जैसे अँधेरे में चाँद
कोई भी वहाँ आ जाए तो देख सकता था,
जंगली जानवर और पानी के पंछी तक पढ़ सकते थे
इतना कोमल स्फुरण उन अक्षरों में पिरोया गया था

मैंने लिखा तुम्हारा नाम
बहुत देर उसे ताकता रहा निष्पन्द
और फिर लौट आया

बालू पर लिखा था वह नाम
इसलिए ज़रूर मिट गया होगा
पानी के थपेड़ों ने मिटाया होगा
या हवा के झोंकों ने
संभव है, जंगली जानवरों और पानी के पंछियों ने भी
कुछ योग दिया हो उपचार में!
लेकिन, समझदार हूँ अगर तो मानूँगा
कि नाम वह मिट गया होगा ज़रूर!

बीत गए कई बरस
कई बाल पके मेरे, कई दृष्टियाँ छूटीं
मगर, अब भी ये लगता है-
जाऊँगा कभी कोशी की घाटी में
तो नाम वह इंतज़ार करता मिलेगा!

जाऊँगा कभी उस ठाँव तो
बाँहें पसारकर दबोचेगी मुझे वह व्याकुल शान्ति
चिल्ला-चिल्ला पुकारेंगे मुझे
मेरे अपने ही लिखे शब्द
अपने ही अक्षर मेरे
मुझे विस्मृत लिपिशास्त्र सिखाएँगे
इस तरह मचलूँगा कि शायद
सारी खुशियाली छिज जाएगी

जाऊँगा कभी कोशी की घाटी में
तो शायद
कभी न लौटूँगा!

हम तीन डालियाँ

एक ही पेड़ की हम तीन डालियाँ हैं
हम पर खिल आए फूल
एक साथ चमकाते हैं पेड़ को
एक ही साथ हम आपका मन मोहते हैं!

पतझड़ आए
तो एक साथ हम करते हैं मुक़ाबला
अक्सर हम ख़ुशियाँ बाँटते हैं औरों की
लेकिन, कितनी आसांनी से हम
बाँट लेते हैं आपस में
एक-दूसरे के आँसू!

एक ही साथ हम देखते हैं
घड़ी में वक़्त
वक़्त की आवाज़ हम एक साथ सुनते हैं
हम तीनों एक ही समय
तीन धाराएँ हैं
अतीत हमें नहीं तोड़ता
भविष्य हमें कभी तोड़ेगा नहीं!

दिल की धड़कनें
हम एक साथ महसूसते हैं
अपनी रगों में
लहू की एक ही तरंग
आईने में देखो तो तीनों की एक ही छवि
उभरती है!

कभी हम चौगुनी करके अपनी उम्र
समय को मोड़ते हैं,
कभी हम बहुत छोटे हो जाते हैं
एक-दूसरे की छाती पर टिकाए अपना सिर
हर दर्द की दवा

हम कितनी आसानी से ढूँढ़ लेते हैं

एक ही धूप के कई रंग हैं हम
कोई हमें कैसे बाँटेगा?
हम एक ही पेड़ की तीन डालियाँ हैं
और
आपका मन मोहते हैं!

सच बात

अंतरिक्ष में जाकर मरीं कल्पना चावला
इससे क्या लोग अंतरिक्ष जाना छोड़ देंगे?

मेरे पिता कहते थे-
पानी का तैराक पानी में मरता है
गाछ का चढ़ाकू गाछ से गिरकर

मौत ऐसी हो तो ही संगत लगती है
- पिता बुदबुदाते

सच बात पिता, सच बात!
देखिए-
ज़िन्दगी के ये लालची
ज़िन्दगी में ही मर जा रहे हैं
और मौत के ये व्यवसायी
मौत में ही

सच बात पिता, सच बात!

कैसे छोड़ेंगी माँ मेरा साथ

अभीप्साओं के अतिरेक से भरकर
उन्होंने दिया होगा जन्म
जाने कितनी योजनाएँ

जाने कितने-कितने आस-मनोरथ
उमड़ते-घुमड़ते रहे होंगे अहर्निश
उनकी अस्मिता के चारों ओर,
उन नौ महीनों में,
जबकि मैं उनके गर्भ में पल रहा था

उस एक कालखण्ड में
जितनी भी जो माएँ रही होंगी
कल्याण की योग्यताधारी,
जितनी भी जो माएँ- चौरासी लाख योनियों के भीतर
सबके बीच रही होगी एक कड़ी मगर मूक
प्रतिस्पर्धा

मेरी माँ ने भी लिया होगा प्रतिस्पर्धा में भाग,
अपनी अस्मिता को काट-काट
जहाँ तक शक्य रहा होगा- अपने सत्य-शिव-सुन्दर को तरास-तरास
उन्होंने दिया होगा मुझे आकार
उन्होंने अपना सर्वोत्तम दाय प्रदान किया होगा पृथ्वी को
- मेरे रूप में
अपना सर्वोत्तम, जो कि अन्ततः वह दे पा सकती थीं
और इस तरह, मेरी माँ ने भी लिया होगा प्रतिस्पर्धा में भाग

अब कैसे मैं यक़ीन करूँ
कि माँ मेरी मर गई
और छोड़ गईं मेरा साथ!

जब तक मैं हूँ
किस उपाय से छोड़ेंगी वह मेरा साथ?

गौर पूजती कन्याएँ

कन्याएँ जब पूजती होती हैं गौर
तुहिन-कण बन-बन
उनकी करुणा

पृथ्वी के मुखमण्डल पर गिरती है

यह किन्तु और
कि तुहिन-कण की सम्पूर्ण आर्द्रता
सोख लेती है हवा पहले ही
और पृथ्वी पर तरंग-मात्र पहुँच पाता है

आपने शायद ध्यान दिया हो
कन्याएँ पूज रही हों गौर
तो विवेकी जनों का हृदय
तनिक कातर हो ज़ाया करता है

अपने सारे भूमण्डल का संचालन
कन्याएँ अपनी इसी करुणा-तरंग
से कर रही हैं

जबकि आप भी मानेंगे
कि दुनिया की सभी कन्याएँ नहीं पूजतीं गौर

मगर देखिए
कि गौर पूजनेवालियाँ अगर कर पा रही हैं इतना
तो आग पजारनेवालियाँ करेंगी कितना?

चक्र

कई-कई प्रकारों के
सामाजिक-मनोवैज्ञानिक दबावों का करते हुए ध्यान
जोगीलाल ने बनाया दो मंज़िला मकान

दोमंज़िले पर गृहप्रवेश हुआ
तो वहाँ जली रोशनी
रोशनी देखी तो जुटने लगे
एक-से-एक नेमव्रतधारी योद्धागण
- कीट, पतंगे, नन्हकी और गन्हकी

जिस जगह मिले आहार वहीं करें विहार
- यह जो क़ानून है,
कोई सरकारी क़ानून तो है नहीं कि जिसमें
सेक्शन से अधिक छेद पाए जाएँ

पहुँचे कीट-पतंगा-वृन्द
तो लगे हाथों आ जुमे महाशय दादुर
जिस जगह मिले आहार!

और आज
जोगीलाल के दोमंज़िले पर
साक्षात् नागराज ने दिए हैं दर्शन
वही बात, जिस जगह मिले...!
बहुत व्यथित हैं जोगीलाल!

ऐ बाबू जोगीलाल,
अब क्या करोगे?
कितनी-कितनी व्यथाओं से
एक ही जनम में भरोगे?

ये मेरे शिक्षक-मित्र

सही निष्कर्ष निकालने में
हर बार बाज़ी मार लेते हैं
जीवकान्त
हर सन्दर्भ को 'नए आदमी' की आचार-संहिता से
जोड़ते हैं महेन्द्र बाबू
इस देश पर से
नारायण जी का खोया विश्वास
फिर से वापस लौटने लगा है।

धूल अब कम हुई है वायुमंडल में
और, कोहरा छँटने लगा है

- युधिष्ठिर की नपुंसकता जानते हो बच्चो?
- बच्चो, राम के पतन की कहानी सुनोगे?
- कितने धूर्त थे मनुस्मृतिकार?
- इस देश के वायुमंडल में
  यह चिरायंध-सी गंध
  किस चीज़ की है, जानते हो बच्चो?
- हर हारे हुए आदमी की जीत के बारे में
  क्या कहता है इतिहास,
  समझोगे बच्चो!

हर तरफ़ से यही सन्दर्भ
हर तरफ़ से यही प्रसंग

भविष्य अब बहुत अनजाना नहीं रह गया है
बहुत-बहुत उलझे भी नहीं रहे
अब जीवन-सूत्र
रोने और सिर पीटने की बातें
अब क्षीण होने लगी हैं!

और,
बाबू सुरेन्द्रनाथ
चुप रहने लगे हैं!

अमर बाबू

मैं अगर आपको चीड़ डालूँ अमर बाबू,
बोटी-बोटी अलग कर भिजवाऊँ फोरेंसिक लेबोरेट्री
किस जगह पाई जाएगी आपकी ईमानदारी आपमें?

शास्त्रों में ईमान नहीं
धंधे में ईमान नहीं
आचरण आपका बेईमान
फिर भी चौबीस दफ़ा याद दिलाते हो
कि आला दरजे के ईमानदार हो!

किस जगह से ईमानदार हो अमर बाबू?

रहते हो बिहार में गाली बकते हो बिहार को
जीते हो ब्राह्मण-धर्म, बात करते हो लोकतंत्र की
खाते हो बेईमान की तो हग कैसे सकते हो ईमान?
कौन-सा तंत्र डाल रखा है आपके पक्वाशय में मनु ने?

सब चलता है
सनातन धर्म में और राम-राज्य में सब चलता है
- कहते हो!

चले तुम्हारे सम्प्रदाय में तो, वह मेरा सम्प्रदाय नहीं
चले तुम्हारे देश में तो, वह मेरा देश नहीं!

कहता है केदार कानन

दस सौ रुपयों के मासिक वेतन में
नहीं बच पाते हैं तीस रुपए प्रतिमाह
कि ख़रीदकर खा सकें प्रतिदिन एक अंडा
या, पी सकें एक गिलास दूध-
सेहत को ठीक रख सकने के लिए

चरमराकर टूटता हुआ परिवार का चक्का
घूमने लगता है जब
मध्यवित्त नौजवान के कपार पर
बहुत महँगी हो जाती है एक कश सिगरेट
और, एक बीड़ा पान
और, खैनी की एक पुड़िया

अथाह दर्द में डूबा हुआ आकण्ठ
विह्वल होकर कहता है केदार कानन-
तुम नहीं समझोगे भाई,
तुम नहीं समझ पाओगे कि
एक, छोटी-सी ही सही, नौकरी पा लेने के बाद

अपने ज़िन्दा रहने से ज़्यादा ज़रूरी
हो जाता है-
परिवार-भर के भोजन के लिए
नमक ख़रीदने का 'बंदोबस्त'
और,
अपनी सेहत ठीक रखने से
ज़्यादा समकालीन दीखने लगती है
टूटे छप्पर की मरम्मत

काम के घंटों से पहले
और, काम के घंटों के बाद भी
अगर स्वायत्त रह पाती प्रतिभा,
तो इतना दुर्दम्य नहीं होता दु:ख
हँस लेते ही कम-से-कम एक बार प्रतिदिन
(जो सेहत के लिए बड़ा गुणकारी होता)
मगर,
एक बार नौकरी पा लेने के बाद
वही बच पाती है उबाल
कि व्यवस्था से माँग सकें स्वायत्तता
और, खा सकें प्रतिदिन एक अंडा
या, और कुछ नहीं तो कह सकें अन्ततः माँ से-
माँ, मुझे माफ़ करो, माँ
समझ लो कि नहीं है कोई तुम्हारा बेटा!

मगर, जब
खून जमाने की साजिश ही बन गई है
अब की व्यवस्था
कुछ करना ही पड़ेगा
अपनी सेहत के लिए-
कहता है केदार कानन!

हँसो नवीन हँसो

तुम्हारे दाएँ दु:खों का पहाड़

तुम्हारे बाएँ पीड़ाओं की नदी
तुम्हारे पीछे दंश की ज्वालाएँ
तुम्हारे आगे संघर्षों का सिलसिला

अजब घिरे हो
ग़ज़ब घिरे हो

इन हालात में भी, लेकिन
हँसो नवीन हँसो
बहुत ज़रूरी है हँसी
बहुत ज़रूरी है

सोचो नहीं कि वक़्त आएगा
जब आराम से हँसोगे
हँसी कहीं अलग से नहीं होती
मतलब- ज़िन्दगी से अलग!

तुम्हारे पीछे सौ-सौ अँगारे
तुम्हारे आगे सौ-सौ कीलें
मगर, तुम्हारे आगे सौ-सौ जीवन
तुम्हारे पीछे सौ-सौ जीवन
और, हँसी कहीं अलग से नहीं होती
मतलब- जीवन से अलग!

मीता, तुम्हारी हँसी

ज़िन्दगी बहुत अस्त-व्यस्त हुई जाती है
साँझ को डूबता है जो सूरज
प्रतिदिन वही नहीं उगता सुबह
रात की कालिमा कुछ और घटाटोप होती जाती है
सुनो मीता, ऐसे ही खिलखिलाती रहो
तुम्हारी हँसी अँधेरे का एक-एक किवाड़ तोड़ गिराती है
तुम्हारी हँसी की रोशनी में
एकदम साफ़ दीखता है एक-एक रास्ता, लक्ष्य-बिन्दु!

बिल्कुल ही कठिन नहीं है जीवन
गर ऐसे ही हँसती रहो तुम
तुम्हारी उपस्थिति हो आलोकमय
सुनो मीता, बिल्कुल अँधेरी नहीं होगी रात
गर हाथ में मशाल हो
भयावह तो कदापि नहीं होगी नदी, जो मज़बूत नाव हो संग

भरसक प्रयास किया है अँधेरे ने
कितनी-कितनी बार तो आक्रमण किया है
पता नहीं कितनी बार त्राहि-त्राहि मचा दी है इसने
लेकिन फिर भी कहाँ मिटा सका है प्रकाश का वंश?

सुनो मीता!
इस सुरक्षित प्रकाश-वंश का संबल है तुम्हारी हँसी
ऐसे ही खिलखिलाती रहो, खण्ड-खण्ड बाँटती रहो काल की शाश्वतता

मीता, तुम्हारी हँसी अँधेरे का एक-एक किवाड़
तोड़ती जाती है, गिराती जाती है
तुम्हारी हँसी की रोशनी में एकदम साफ़ दीखता है
एक-एक रास्ता, लक्ष्य-बिन्दु!

विश्वास दो साथी

मैं जो दिन-रात बरसता हूँ
प्यासी धरती पर
कजरारे बादल बनकर
ये बूँदें तुम तक पहुँचती हैं साथी?

अँधेरे को चीरने का दम भरती
ये किरण-मालाएँ
जो खुद को जला-जलाकर पैदा करता हूँ,
तुम्हारी आँखों को छू पाती हैं?

साथी!

बहुत व्याकुलता से
गुहराता हूँ शब्द...शब्द!
ये शब्द किसी नदी-प्रवाह की तरह
या किसी
अदृश्य तरंग की ही तरह
तुम्हारे मन की राह चल पाते हैं?

विश्वास दो साथी!
मुझे विश्वास दो
तुम तक ही नहीं पहुँच पाया
तो यह सब क्यों?
यह सब किसलिए?

सुनो वियोगी

इसी तरह बीतता जाएगा, बीतता जाएगा
क्योंकि बीतने से बेहतर
और कुछ जानता नहीं समय
तुम भी यूँ ही बीत जाओगे क्या?

रोक सको तो रोको
समय की गति को
निर्दिष्ट दिशा में नहीं मोड़ सके जो
तो रीते हो, रीते रह जाओगे वियोगी!

क्योंकि अपना कोई स्वरूप
अपना कोई आकार होता नहीं समय का
कर्त्तव्य के पैमाने से ही
माप-नाप सकोगे उसे
फीता-तराजू ही नहीं रहे तुम्हारे पास
तो, कैसे माप-नाप सकोगे उसे?

पकड़ो चाहे बन्दूक या क़लम
लेकिन, पकड़ ही लो

दुविधा प्राण-रस सोखती है
सुनो वियोगी
तुम्हारी कविता अभी भी
कभी दाएँ तो कभी बाएँ के बीच
बौखती है

तोड़ सको तो उस पिद्दी संस्कार को तोड़ो
जिसे तुम्हारे गाँव, तुम्हारे गुरु
तुम्हारे बचकाना कार्यकलापों ने रचा है
मोड़ सको तो मोड़ो समय की गति को

सुनो वियोगी,
तुम्हें जो चौबीस घंटे का
समय दिया गया है प्रतिदिन,
उसे ही यदि मोड़ नहीं सके
तो उस तानाशाह को कैसे तोड़ सकोगे,
जिसकी जड़ें सात समन्दर
अट्ठाईस पाताल तक फैली हैं!

मुझे एक हिन्दू ही माना जाएगा

जबसे मुझे होश आए
मैंने देवताओं के चरण
कभी छूए नहीं!
बलि नहीं चढ़ाई काली की वेदी पर
कभी किसी धर्मस्थल की
प्रदक्षिणा नहीं की
चरणोदक की एक घूँट तक
नहीं उतारी हलक में

लेकिन
आज जब धधका दिया है उन्होंने
दिलों में
हैवानियत की आग

पी चुके हैं देवपुत्र
हिंसा की ज़हरीली शराब
ये आदमख़ोर भेड़िए
शिकार कर चुके आदमी का विवेक-
अपने तथाकथित पड़ोसियों की समझ में
मुझे एक हिन्दू ही माना जाएगा

शैतान के छन्द बुदबुदाकर
आज तक मैंने
एक चींटी तक नहीं मारी
लेकिन
जब बावेला मचेगा
वे देखना चाहेंगे मेरे हाथों में निशित परशु
और
जब प्रतिशोध लिया जाएगा
मेरी ही गरदन पर पड़ेगी
तलवार की पहली वार!

ओह!
कैसा यह खेल है
कैसी राजनीति!
और, यह चिरायंध-गंध
किस धर्म के आदमी के जलने का
जलने का है यह देश!

भवानी भाई की याद

टूट गए जो मेरे अपने थे
छूट गए जो थे पराए

अब एक शून्य है
जिसे भरना है
जिसे रचना है

रचने से बचूँगा नहीं
इसी से बचूँगा तो
और कुछ रचूँगा क्या?

भरते हुए इसी शून्य को
कहते थे भवानी भाई!

मौलाना, आपका नादस्वरम्

(डॉ. शेख़ चिन्ना मौलाना से नादस्वरम् सुनते हुए!)

समय ने अपनी गति रोक ली है
हवा थम गई है

पेड़-पौधे तक हो गए हैं जड़ीभूत
कैसा अर्थगर्भ मौन व्याप्त है चतुर्दिक
एकमात्र सत्य हुई वह तरंग
जो आपके नादस्वरम् से निकलती है
देखिए मौलाना!
लगता है, जैसे अभी-अभी कहीं से आएगा कोई मोहित हिरण
और आपकी देह से चिपक बिलमेगा

आपका नादस्वरम् मौलाना!
लगता है, मानो धरती की कोख में पड़े लाखों-लाख बीज
अथाह जीवन के लिए
अँकुर बन ऊपर की ओर झाँकने लगे हैं

लगता है, आपके नादस्वरम् में कै़द थी
ज़िन्दगी अभी तक
जो आपके होंठ लगते ही
यक-ब-यक चारों ओर बिखर गई है
फगुआ के अबीर की तरह

मौलाना, आपका नादस्वरम्
बेधता है अंध विवर

जोड़ता है टूटे हृदयों का राग
ओह! कितना समस्वर रचती है ज़िन्दगी
शाबास मौलाना, शाबास!
यही हो ज़िन्दगी, ऐसी ही हो ज़िन्दगी!

संभावना

रास्ते से चलना
तो बहुत ग़ौर से देखना
एक-एक जगह

तुम पाओगे-
कोई भी जगह बन सकती है- युद्धक्षेत्र
किसी भी जगह उग सकता है- बोधिवृक्ष

लोगों से मिलना
तो निहायत होश से लेना
हर एक की नोटिस

तुम पाओगे-
हर एक में मौजूद हैं
स्रष्टा होने की तमाम गहराइयाँ
हर आदमी रच सकता है इतिहास
जबकि कोई भी हो सकता है हत्यारा

रास्ते से चलना
तो ज़रा होश से देखना
एक-एक जगह!

कुमारी विद्या राय

अँधेरे घर के कोने में मिरचैया के जंगल की तरह
तुमने जन्म लिया था ज़रूर
पर अब जूही के गुच्छे की तरह अपने अस्तित्व का चिह्न

हवा के प्रस्तर हृदय पर छोड़ो
गाँववालों की छाती पर शिलालेख लिख़ो कुमारी विद्या राय!

धुएँ के पिलपिले घटाटोप में तुम्हारा भ्रूण पला था अवश्य
पर अब अपने मज़बूत हाथों से इन दीयों को जलाओ
कुमारी विद्या राय!
अँधेरे को भगाने के ही अभियान में निकले थे ये दीए
मगर अँधेरे ने ही इन्हें खदेड़ दिया

अपना सर थोड़ा उठाओ, छाती थोड़ी सीधी करो
गाँववालों का भ्रम ज़रा तोड़ो कि मैथिल कन्याओं की रीढ़ नहीं होती
ये गाँववाले पीछले पाँच हज़ार वर्षों से
रीढ़विहीन कन्याएँ देखने के शौक़ीन हैं

सूरज, जो आज तक तुम्हारी कोठरी से बाहर उगता रहा है
आज तुम्हारी आत्मा में उग रहा है
अँधेरा थोड़ा उलीचो तुम अपनी ओर से भी
तुम्हारी जैसी ही हैं सूरज की ये सातों किरणें, त्वरा-संवेग-भरिता!
आँखें खोलकर ज़रा देखो कुमारी विद्या राय!

पाँच हज़ार वर्षों से
तुम्हारी भी रीढ़ होती आई है!
पर, यह क्या तुमने अपनी हालत बनाई है!

सरीसृप के पिंजरे को तुम कब तक अपना घर मानोगी?
कब तक स्वाँग रचोगी उपेक्षित मिरचैया के जंगल का?
हे जूही की कली!
अपने मज़बूत हाथों से इन दीयों को जलाओ
गाँववालों की छाती पर शिलाशेख लिखो
लिखो कुमारी विद्या राय, लिखो!
शिलालेख!

सुनो पद्मसंभव

ख़ूब गहराई से जोड़ना भैया मकान की नींव
एक-एक ईंट ख़ूब जतन से जोड़ना
मकान जो यह बनेगा मज़बूत
तुम्हारी भी मज़बूती इसी से थाही जाएगी

धूएँ की जो होती है उदास लकीर
वह भी रच सकती है इतिहास अजेय
गहरी अँधेरी रात ही बहुधा
रोशनी की माँ हुआ करती है

भविष्य की क्या कभी हो सकती है कोई सीमा?
कण-कण में बसती है जो आत्मा अधीरा
अपने संबंध में किसी भी तरह की
कोई-सी भी संभावना से डरती नहीं है

सुनो पद्मसंभव!
ख़ूब सतर्कता से चढ़ना सीढ़ी
बढ़ना अनंत
बकोध्यान लगाकर ज़िन्दगी की माला गूँथना
ज़िन्दगी वह नहीं, जिसे जिया तुमने आज तक
ज़िन्दगी वह है, जो जियोगे आज के बाद!

शांतं पापम्

नहीं-नहीं ब्राह्मण देवता
जैसे बग़लें काटकर निकलता आया अब तक
वैसे ही निकल जाऊँगा आगे भी
सीधी टकराहट कभी न चाहूँगा
बशर्ते कि चुनने की परिस्थिति रहे

खुद का खेत आबाद न करूँ
उजाड़ूँ जाकर आपकी फ़सल

मुझसे कभी न होगा
मैं ब्राह्मण थोड़े ही हूँ या कोई देवता!

न मैंने आपका लोकतंत्र छुआ है न जीवनाधिकार
दूषित नहीं किया मैंने आपका वायु
गैरमजरुआ आम तमाम निलाम हो गए
कि आपकी डीह पर जाकर करूँ मूत्रत्याग
न-न, ऐसा तो कुछ भी न किया मैंने अनकिया
फिर भी
चोट लगी आपको
और, वह भी रीढ़ में लगी!

मरणमुख संज्ञाओं की हो ही जाती है रीढ़ कमज़ोर
चाहे आदमी की हो चाहे राजमहल की
फिर मुझ पर उत्तेजित क्यों होते हो?
अपने स्वास्थ्य पर क्यों नहीं?

क्षमा करो ब्राह्मण देवता
मरते हुओं को दु:ख देना पाप कहा है तुम्हीं ने ग्रन्थों में
शांतं पापम्!

किमर्थं पर्वतं ब्रजेत्?

रुको मत बन्धु, चलो
ज़रा तेज़ क़दम चलो
अब जल्दी ही दिन ढलना है
और हमें
पहाड़ के उस पार तक चलना है

यहीं आक के पौधों में
अगर मधु मिलता
तो कोई क्योंकर पहाड़ तक चलता?

मृत्युबोध

घिरती जाती है देह कुहासों से
घना ठंढापन है
छूट रही है कंपकंपी
पैर मेरे, तुम ज़रा सम्हलो
थोड़ी ऊर्जा उधार लो किसी से
जाँघ से ही ले लो तत्काल
लेकिन लो, और लड़ो
घिरता जाता है सर्वांग घने ठंढेपन से

तुम भी घिर गए जाँघ?
तुम बचो
तुम बचोगे तो सम्हाल सकोगे
किसी-न-किसी तरह पैर को भी
कौन तुम्हें उधार दे ऊर्जा?
हाथ तो पहले ही से सर्द हुए जाते हैं

हृदय तुम ज़रा देखो
मगर हाँ,
खुद ज़रा सम्हल के
अपनी मत दो
बाँहों से दिलाओ उसे

बाँह! तुम्हारा वह सगा ठहरा
देखो सम्हालो उसे
भूल जाओ कि
क्षत्रिय बाँहों से निकले
और पैरों से शुद्र

सब झूठ है
सब-का-सब झूठ
कोई कहीं से नहीं निकला
सब स्त्री की योनि से निकले

बाँह, देखो, सम्हालो उसे
मगर क्या तुम भी?
घिरती जाती है देह कुहासों से
घना ठंढापन है,
तुम भी घिर गए बाँह

ओह!
सब-के-सब घिर गए!

मोहभंग के लिए

मुझे ज़रा भी बुरा नहीं लगा

जिस फल को तुमने
सेब समझकर से रखा है
वह असल में कोई फल है ही नहीं
सेमल का फल भी कोई फल होता है?

मगर,
कौन तुम्हें समझाए?
से रक्खे हो
दबोचकर पकड़े हो!

सच पूछो
तो मुझे ज़रा भी बुरा नहीं लगा

आख़िर
मोहभंग के लिए आस्था ज़रूरी है न!

000